

असहयोग आंदोलन के वैचारिक आधार : गांधी, अहिंसा और स्वराज की अवधारणा

डॉ. नसरूल हक

शिक्षक, इतिहास

उच्च माध्यमिक विद्यालय, गोढ़ियारी

हनुमाननगर, दरभंगा, बिहार

सारांश

असहयोग आंदोलन को प्रायः जन-उभार की घटना के रूप में स्मरण किया जाता है। मुख्य तर्क यह है कि गांधी ने रॉलेट अधिनियम, जलियाँवाला बाग और खिलाफत प्रश्न से उपजे असंतोष को तीन अवधारणाओं के सहारे दिशा दी- स्वराज, अहिंसा-सत्याग्रह और असहयोग। इस वैचारिक ढाँचे ने कांग्रेस के 1920 के संगठनात्मक पुनर्गठन, बहिष्कार-कार्यक्रम और रचनात्मक कार्य को जोड़ा। आलेख यह भी दिखाता है कि जमीनी स्तर पर आंदोलन का स्वरूप क्षेत्र-दर-क्षेत्र भिन्न था, कि किसानों और श्रमिकों की कार्रवाइयाँ अक्सर कांग्रेस के निर्देश से आगे या अलग चलीं, और कि चौरी-चौरा के बाद 1922 का स्थगन वैचारिक तर्क की परिणति था, जिस पर समकालीन नेताओं में तीव्र मतभेद रहे। निष्कर्ष यह है कि आंदोलन का स्थायी महत्व तात्कालिक राजनीतिक सफलता या विफलता से कम, राजनीतिक लक्ष्य और नैतिक साधन को जोड़ने वाली जन-राजनीति की रचना में है।

मुख्य शब्द: असहयोग आंदोलन, गांधी, अहिंसा, सत्याग्रह, स्वराज, खिलाफत, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, चौरी-चौरा।

प्रस्तावना

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय राजनीति में एक असामान्य स्थिति बनी। युद्ध-काल की महँगाई, भर्ती और करों से उपजी थकान थी; युद्ध में सहयोग के बदले सुधारों की अपेक्षा थी; और उसके स्थान पर मिले दमनकारी कानून तथा 1919 की अमृतसर की हिंसा। इसी पृष्ठभूमि में मोहनदास करमचंद गांधी, जो 1915 में दक्षिण अफ्रीका से लौटे थे और चंपारण, अहमदाबाद तथा खेड़ा के अनुभवों से स्थानीय संघर्षों के संगठक के रूप में उभर चुके थे, अगस्त 1920 में असहयोग का आह्वान किया।

यह आलेख तीन प्रश्न उठाता है। पहला, असहयोग के पीछे कौन-सी वैचारिक संरचना थी और उसका स्रोत क्या था? दूसरा, वह संरचना कांग्रेस के संगठन और कार्यक्रम में किस प्रकार रूपांतरित हुई? तीसरा, जमीनी वास्तविकता और विचार के बीच की दूरी ने आंदोलन के स्थगन और आलोचनाओं को कैसे आकार दिया? अध्ययन ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक है। प्राथमिक आधार के रूप में गांधी की 'हिंद स्वराज' और 'यंग इंडिया' तथा 'नवजीवन' के लेख तथा 1920 के कलकत्ता विशेष अधिवेशन और नागपुर अधिवेशन के कांग्रेस प्रस्ताव लिए गए हैं। घटना-क्रम और व्याख्या के लिए जूडिथ ब्राउन, सुमित सरकार, बिपन चंद्र तथा अन्य द्वितीयक अध्ययन प्रयुक्त हैं।

इतिहास-लेखन में असहयोग की व्याख्या कई धाराओं में हुई है। राष्ट्रवादी आख्यान ने इसे गांधी के नेतृत्व में एकीकृत राष्ट्रीय उभार कहा। कैम्ब्रिज-धारा के अध्ययनों जूडिथ ब्राउन ने स्थानीय हितों, गुटबंदी और

संगठनात्मक गठजोड़ों पर बल दिया। निम्नवर्गीय इतिहास-लेखन के अध्ययनों ने दिखाया कि किसान और अधीनस्थ समूह कांग्रेस के निर्देशों की अपनी व्याख्या करते थे और गांधी का नाम उनके लिए अलग अर्थ भी ग्रहण कर लेता था।³ यह आलेख इन्हें परस्पर विरोधी नहीं, पूरक मानता है: विचार ऊपर से आया, किंतु उसकी जमीनी अभिव्यक्ति नीचे से निर्धारित हुई।

रॉलेट अधिनियम और जलियाँवाला बाग- मार्च 1919 में पारित रॉलेट अधिनियम ने बिना मुकदमे के गिरफ्तारी और विशेष न्यायाधिकरणों की व्यवस्था की। गांधी ने इसके विरुद्ध देशव्यापी सत्याग्रह का आह्वान किया, जिसमें अप्रैल 1919 में पंजाब और अन्यत्र हिंसा भड़की। 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर में जलियाँवाला बाग में जनरल डायर के आदेश पर निहत्थी भीड़ पर गोलीबारी हुई और पंजाब में मार्शल लॉ लगाया गया। सरकार की हंटर समिति, 1919-20 और कांग्रेस की अपनी जाँच-समिति के निष्कर्षों में भारी अंतर ने भारतीय जनमत में अविश्वास को गहरा किया। खिलाफत का प्रश्न- युद्धोत्तर तुर्क साम्राज्य के विघटन की आशंका से भारतीय मुसलमानों में खिलाफत के प्रश्न पर गहरा असंतोष था। गांधी ने इसे हिंदू-मुस्लिम एकता का ऐतिहासिक अवसर माना और खिलाफत समिति के साथ संयुक्त कार्रवाई का मार्ग अपनाया। आगे यही संयोजन असहयोग की शक्ति भी बना और उसकी कमजोरी भी।

संवैधानिक सुधारों से निराशा- 1919 के भारत शासन अधिनियम - मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार ने प्रांतों में द्वैध शासन लागू किया, जिसे राष्ट्रवादियों के बड़े वर्ग ने अपर्याप्त माना। यह स्वाभाविक ही था कि विधान परिषदों का बहिष्कार असहयोग के प्रारंभिक कार्यक्रमों में रखा गया। गांधी के लिए स्वराज केवल शासकों के परिवर्तन का नाम नहीं था। 'हिंद स्वराज' में उन्होंने तर्क दिया कि वास्तविक स्वराज तब है जब लोग स्वयं पर शासन करना सीखें; अंग्रेजों के स्थान पर उनके जैसी व्यवस्था लागू कर देने को वे स्वराज नहीं मानते थे। इस प्रकार स्वराज के दो स्तर बने: व्यक्ति और समाज का नैतिक आत्मसंयम, तथा राजनीतिक आत्मनिर्णय।

राजनीतिक स्तर पर स्वराज की सीमाएँ जानबूझकर अस्पष्ट रखी गईं। दिसंबर 1920 में नागपुर में कांग्रेस ने अपने लक्ष्य को सभी वैध और शांतिपूर्ण साधनों से स्वराज की प्राप्ति के रूप में परिभाषित किया; इस सूत्र में ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर या बाहर, दोनों संभावनाएँ खुली रहीं। पूर्ण स्वतंत्रता का स्पष्ट संकल्प कांग्रेस ने दिसंबर 1929 के लाहौर अधिवेशन में लिया। असहयोग-काल की यह अस्पष्टता राजनीतिक भी थी और बाद में आलोचना का विषय भी। गांधी की अहिंसा का अर्थ केवल हिंसा से बचना नहीं, बल्कि अन्याय का सक्रिय और अनुशासित प्रतिरोध था। सत्याग्रह में सत्य का आग्रह और साधन की शुद्धता, दोनों अपरिहार्य थे। उनका मत था कि अन्याय का प्रतिकार प्रतिपक्षी को पीड़ा पहुँचाकर नहीं, स्वयं कष्ट सहकर और उसकी नैतिक चेतना को संबोधित करके किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से अहिंसा नीति की सुविधा नहीं, राजनीतिक लक्ष्य की प्रकृति तय करने वाला सिद्धांत थी: हिंसा से प्राप्त स्वराज का स्वरूप भी हिंसक होगा।

यहाँ गांधी का एक राजनीतिक तर्क भी था, जिस पर इतिहासकार ध्यान दिलाते हैं। निहत्थे जनसमूह के लिए अनुशासित अहिंसा राज्य की शक्ति के सामने सबसे प्रभावी भी थी और नैतिक रूप से सबसे सुरक्षित भी। इसी कारण हिंसा की किसी भी घटना को गांधी आंदोलन की मूल शर्त का उल्लंघन मानते थे। असहयोग की वैचारिक युक्ति सरल किंतु दूरगामी थी: औपनिवेशिक राज्य अपने कर्मचारियों, न्यायालयों, विद्यालयों और बाजारों में भारतीयों के सहयोग पर टिका है; यदि यह सहयोग वापस लिया जाए तो सत्ता की वैधता और व्यावहारिक क्षमता दोनों क्षीण होंगी। गांधी ने इसे शासन के विरुद्ध हिंसा का विकल्प और 'दुष्ट व्यवस्था से सहयोग न करने के नैतिक कर्तव्य' का रूप दिया। 1 अगस्त 1920 को उन्होंने वायसराय को पत्र लिखकर अपने पदक लौटा दिए। उसी दिन बाल गंगाधर तिलक का निधन हुआ। यह संयोग असहयोग के औपचारिक आरंभ को प्रतीकात्मक महत्व दे गया।

गांधी ने एक वर्ष में स्वराज की बात भी कही, जो शाब्दिक भविष्यवाणी से अधिक अनुशासित जन-प्रयास की शर्त करने की चुनौती थी। आंदोलन के कार्यक्रम के दो पक्ष थे। निषेधात्मक पक्ष: सरकारी उपाधियों और पदों का त्याग; विधान परिषदों के चुनावों का बहिष्कार, नवंबर 1920, सरकारी या सरकार-सहायता-प्राप्त विद्यालयों और न्यायालयों का बहिष्कार; विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार। 1921 में विदेशी कपड़ों की सार्वजनिक होली इसका प्रतीक बनी। रचनात्मक पक्ष: राष्ट्रीय विद्यालयों और विद्यापीठों की स्थापना पंचायती या पंच-निर्णय की वैकल्पिक व्यवस्था; खादी और चरखे का प्रसार; और तिलक स्वराज कोष जैसे आर्थिक संसाधन-निर्माण। इस द्वैध ने आंदोलन को केवल विरोध की राजनीति से अलग किया: बहिष्कार जिन संस्थाओं से सहयोग वापस ले रहा था, रचनात्मक कार्य उनके नैतिक और व्यावहारिक विकल्प खड़े करने की कोशिश था। किंतु व्यवहार में बहिष्कार की गति प्रायः रचनात्मक संस्थाओं के विकास से अधिक तेज रही, जिससे कार्यक्रम की निरंतरता पर प्रश्न उठे। कांग्रेस का संगठनात्मक रूपांतरण

सितंबर 1920 के कलकत्ता विशेष अधिवेशन ने असहयोग प्रस्ताव पारित किया और दिसंबर 1920 के नागपुर अधिवेशन ने उसे पुष्ट किया। नागपुर में कांग्रेस ने अपने संविधान में परिवर्तन किया: भाषाई आधार पर प्रांतीय कांग्रेस समितियाँ, गाँव और तहसील स्तर तक संगठन, अल्प सदस्यता-शुल्क तथा एक छोटी कार्य-समिति की व्यवस्था की गई। इससे कांग्रेस, जो वार्षिक अधिवेशनों में मिलने वाले शिक्षित वर्ग का मंच थी, एक सतत कार्यशील जन-संगठन की ओर बढ़ी। नेतृत्व का समर्थन एकसमान नहीं था। चित्तरंजन दास ने कलकत्ता में असहयोग का विरोध किया था, पर नागपुर में प्रस्ताव का समर्थन किया। मुहम्मद अली जिन्ना ने कांग्रेस छोड़ दी। एनी बेसेंट आंदोलन-पद्धति की आलोचक रहीं। फिर भी मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास, वल्लभभाई पटेल और राजेंद्र प्रसाद जैसे अनेक नेताओं ने वकालत छोड़ी, और इससे आंदोलन को नैतिक विश्वसनीयता मिली।

आंदोलन की सामाजिक व्याप्ति असमान थी, इसलिए सर्वत्र एक-सा चित्र प्रस्तुत करना भ्रामक होगा।

- अवध: यहाँ किसान सभाओं और एका जैसे आंदोलनों ने लगान और बेदखली के विरुद्ध स्वतंत्र किसान-संघर्ष चलाया, जो कांग्रेस के कार्यक्रम से जुड़ा भी था और उससे भिन्न भी।
- मालाबार: खिलाफत और असहयोग के आह्वान 1921 में मोपला विद्रोह की स्थानीय परिस्थितियों से टकराए, जिसमें हिंसा और दमन हुआ और सांप्रदायिक व्याख्याएँ भी उभरीं।
- गुजरात और आंध्र: बारडोली जैसे क्षेत्रों में कर-नकार और ग्रामीण संगठन अपेक्षाकृत अनुशासित रहे।
- असम और बंगाल: चाय-बागान श्रमिकों के पलायन और श्रमिक-संगठन गतिविधियों ने श्रमिक वर्ग के प्रश्नों को उठाया।
- बिहार: चंपारण के अनुभव और स्थानीय नेताओं- जैसे राजेंद्र प्रसाद और मजहरुल हक के कारण यहाँ राष्ट्रीय विद्यालयों, कांग्रेस-संगठन और वकालत-त्याग के कार्यक्रम को सक्रिय आधार मिला, पटना में बिहार विद्यापीठ और सदाकत आश्रम इसी कार्य के प्रतीक बने।

महिलाओं और विद्यार्थियों की भागीदारी उल्लेखनीय थी। महिलाओं ने चरखा, खादी, धन-संग्रह और धरना देकर बहिष्कार लागू कराने के माध्यम से सार्वजनिक भूमिका ग्रहण की। इसे अधिकतर पारिवारिक और नैतिक भूमिका के विस्तार के रूप में प्रस्तुत किया गया, जो तत्कालीन सामाजिक मर्यादाओं के भीतर राजनीतिक भागीदारी का मार्ग था। भागीदारों की कुल संख्या के कुछ दावे प्रचलित हैं, पर समकालीन आँकड़े अनुमानात्मक हैं। इसलिए यह आलेख किसी एक संख्या पर निर्भर नहीं करता। विश्वसनीय निष्कर्ष केवल यह है कि राजनीतिक भागीदारी का दायरा पहले की तुलना में बहुत बढ़ा। नवंबर 1921 में युवराज की भारत यात्रा के विरुद्ध हड़तालें हुईं और बंबई में हिंसा भड़की, गांधी ने उपवास किया और सविनय अवज्ञा की योजना को

सीमित रखा। 4 फरवरी 1922 को गोरखपुर जिले के चौरी-चौरा में जुलूस पर पुलिस कार्रवाई के बाद भीड़ ने थाने को आग लगा दी और कई पुलिसकर्मी मारे गए। 12 फरवरी 1922 को बारडोली में कांग्रेस कार्य-समिति ने सामूहिक सविनय अवज्ञा को स्थगित कर दिया।

गांधी का तर्क यह था कि हिंसा आंदोलन की बुनियादी शर्त के विरुद्ध है और अनुशासनहीन भीड़ के साथ आगे बढ़ना स्वराज के लक्ष्य को ही नुकसान पहुँचाएगा। यह निर्णय वैचारिक संगति से उपजा था, पर इसके राजनीतिक मूल्य पर तत्काल विवाद हुआ। जवाहरलाल नेहरू और अन्य युवा नेता, जो उस समय कारावास में थे, इस निर्णय से निराश हुए। 10 मार्च 1922 को गांधी स्वयं गिरफ्तार हुए और उन्हें छह वर्ष की सजा हुई; स्वास्थ्य कारणों से वे फरवरी 1924 में रिहा हुए। शाहिद अमीन ने चौरी-चौरा को केवल 'हिंसा के क्षण' के रूप में नहीं, बल्कि स्मृति, मुकदमे और राष्ट्रीय आख्यान में उसकी बदलती व्याख्याओं के रूप में पढ़ा है, जो इस प्रसंग को समझने के लिए आवश्यक पूरक दृष्टि है। समकालीन और परवर्ती आलोचनाओं को तीन वर्गों में रखा जा सकता है। वैचारिक- रवींद्रनाथ टैगोर ने 'सत्येव आह्वान' में शैक्षिक बहिष्कार और राष्ट्रवाद की संकीर्णता पर चिंता जताई और चेतावनी दी कि अंधानुकरण और बौद्धिक अलगाव का खतरा है।

रणनीतिक- चित्तरंजन दास और मोतीलाल नेहरू ने 1922 के बाद परिषद-प्रवेश का मार्ग चुना और 1923 में स्वराज्य पार्टी की स्थापना की। यह असहयोग की सीमा की व्यावहारिक स्वीकृति थी। समाजशास्त्रीय- गुहा और पांडे जैसे इतिहासकारों के अनुसार कांग्रेस जन-आंदोलन का नेतृत्व करती थी, पर उस पर पूर्ण नियंत्रण नहीं रख पाती थी, किसान-संघर्ष अपनी स्वतंत्र गति से चलते थे। यह आलोचना गांधीवादी अनुशासन और जन-ऊर्जा के बीच संरचनात्मक तनाव दिखाती है। खिलाफत के साथ गठबंधन पर भी मतभेद है। इसने अभूतपूर्व हिंदू-मुस्लिम सहयोग रचा, किंतु 1922 के बाद उसके विघटन और सांप्रदायिक तनावों ने उसकी सीमाएँ दिखाईं।

असहयोग ने स्वतंत्रता आंदोलन की तीन दीर्घकालिक विशेषताएँ स्थापित कीं: कांग्रेस का जनाधारित संगठन; अहिंसक जन-कार्रवाई का राजनीतिक मुहावरा और रचनात्मक कार्य की परंपरा। अंतरराष्ट्रीय प्रभाव को सावधानी से समझना चाहिए। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने स्वयं गांधी की पद्धति से प्रेरणा की बात की। अन्य आंदोलनों पर प्रभाव भी स्वीकार किया गया है, किंतु प्रत्येक की अपनी स्थानीय परिस्थितियाँ थीं और उन्हें गांधी-मॉडल की प्रत्यक्ष प्रतिलिपि कहना ऐतिहासिक अतिसरलीकरण होगा।

निष्कर्ष

असहयोग आंदोलन का वैचारिक आधार स्वराज के बहुस्तरीय अर्थ, अहिंसा-सत्याग्रह की साधन-शुद्धता और औपनिवेशिक वैधता से सहयोग की वापसी के सिद्धांत में निहित था। इन्होंने कांग्रेस के संगठन, बहिष्कार-कार्यक्रम और रचनात्मक कार्य को एकसूत्र दिया। साथ ही, क्षेत्रीय विविधता, किसान-श्रमिक स्वायत्तता और खिलाफत से जुड़े प्रश्न दिखाते हैं कि विचार और व्यवहार के बीच दूरी वास्तविक थी। 1922 का स्थगन इसी दूरी का परिणाम और उसकी वैचारिक संगति, दोनों था। एक वर्ष में स्वराज का लक्ष्य पूरा नहीं हुआ, पर आंदोलन ने भारतीय राजनीति की भाषा, संगठन और सामाजिक दायरे को स्थायी रूप से बदल दिया। इसी अर्थ में इसका मूल्यांकन होना चाहिए।

फुटनोट :-

1. एम. के. गांधी, 'हिंद स्वराज' (1909); अंग्रेज़ी संस्करण: 'हिंद स्वराज एंड अदर राइटिंग्स', संपादक एंथनी जे. पैरेल (कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997)।
2. जूडिथ एम. ब्राउन, 'गांधीज़ राइज़ टू पावर: इंडियन पॉलिटिक्स 1915-1922' (कैम्ब्रिज, 1972)।

3. 'महात्मा गांधी के संकलित संपूर्ण कार्य' (प्रकाशन विभाग, भारत सरकार), 1920-22 के खंडों में 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के लेख।
4. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, कलकत्ता विशेष अधिवेशन (सितंबर 1920) और नागपुर अधिवेशन (दिसंबर 1920) के प्रस्ताव एवं विवरण।
5. जानेंद्र पांडे, 'पीजेंट रिवोल्ट एंड इंडियन नेशनलिज़्म: द पीजेंट मूवमेंट इन अवध, 1919-22', 'सबऑल्टर्न स्टडीज़', खंड 1 (1982)।
6. शाहिद अमीन, 'इवेंट, मेटाफर, मेमरी: चौरी-चौरा, 1922-1992' (कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस, 1995)।
7. रविंदर कुमार (संपादक), 'एस्सेज़ ऑन गांधियन पॉलिटिक्स: द रॉलेट सत्याग्रह ऑफ 1919' (ऑक्सफ़ोर्ड, 1971); हंटर समिति (अशांति जाँच समिति) की रिपोर्ट, 1920।
8. गेल मिनाल्ट, 'द खिलाफत मूवमेंट: रिलिजियस सिम्बॉलिज़्म एंड पॉलिटिकल मोबिलाइज़ेशन इन इंडिया' (कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982)।
9. डेनिस डाल्टन, 'महात्मा गांधी: नॉनवायलेंट पावर इन ऐक्शन' (कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993)।
10. पार्थ चटर्जी, 'नेशनलिस्ट थॉट एंड द कॉलोनिअल वर्ल्ड' (जेड बुक्स, 1986), गांधी पर अध्याय।
11. बिपन चंद्र एवं अन्य, 'इंडियाज़ स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस' (पेंगुइन, 1988); सुमित सरकार, 'मॉडर्न इंडिया, 1885-1947' (मैकमिलन, 1983)।
12. राजेंद्र प्रसाद, 'आत्मकथा' (1946), बिहार से संबंधित अध्याय।
13. शेखर बंद्योपाध्याय, 'फ्रॉम प्लासी टू पार्टीशन' (ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2004)।
14. रवींद्रनाथ टैगोर, 'सत्येर आह्वान' (1921); अंग्रेज़ी रूप: 'द कॉल ऑफ़ डूथ', 'मॉडर्न रिव्यू' (अक्टूबर 1921)।
15. रणजित गुहा, 'डॉमिनेंस विदाउट हेजेमनी: हिस्ट्री एंड पावर इन कॉलोनिअल इंडिया' (हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997)।
16. मार्टिन लूथर किंग जूनियर, 'स्ट्राइड टुवर्ड फ्रीडम' (1958)